राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हैं शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हम पाएं तो संसार में
सुख शांति प्रसार

वर्ष 65 अप्रैल-जून 2017 अंक 2

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ
1.	भजन *मीराबाई*	01
2.	श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या *लालाजी महाराज*	02
3.	मौन *डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज*	07
4.	साधन *अनमोल वचन*	10
5.	समय थोड़ा है *परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब*	14
8.	हयहया *प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र*	18
9.	ध्यान में बैठने से पहले *स्वामी अशोकानन्द*	30

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी

सम्पादक

डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 65 अप्रैल–जून 2017 अंक–2

बिनती

बिनवत हौं कर जोरि कै, सुनिए कृपा निधान।
साध संगति सुख दीजिए, दया गरीबी दान।।

जो अब के सत्गुरु मिलैं, सब दुख आखौं रौय।
चरनों ऊपर सीस धरि, कहौं जो कहना होय।।

सुरति करौं मेरे साइयाँ, हम हैं भवजल माहिं।
आपे ही बहि जायेंगे, जो नहीं पकरौ बाहिं।।

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहि।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहि।।

– कबीर

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या

(पिछले अंक से आगे)

53

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम्।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।। **10।15।**

अर्थः– हे भूतों (जीवों) को उत्पन्न करने वाले, भूतों के ईश्वर, देवों के देव, जगत के स्वामी, पुरुषोत्तम, आप स्वयं ही अपने को जानने वाले हैं।

भावार्थः– प्रभु की सर्वव्यापकता की प्रार्थना का यह अति सुन्दर श्लोक है जो कहता है कि आपको तो केवल आप ही जानते हैं अन्य कोई नहीं।

54

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।। **10।20।**

अर्थः– हे गुडाकेश (नींद को जीतने वाले अर्जुन) मैं सर्व भूतों के (जीवों के) हृदय में स्थित और आत्मा हूँ तथा सब जीवों का आदि मध्य और अन्त मैं ही हूँ।

भावार्थः– यहाँ भगवान स्वयं कहते हैं कि सब जीव जिस आत्मा की उपस्थिति से जीवित कहलाते हैं वह मैं ही हूँ और उनका आदि मध्य और अंत यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश (उत्पन्नकर्त्ता, पालनकर्त्ता और मूल स्त्रोत में मिलाने वाला) मैं ही हूँ।

55

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।। **10।40।**

अर्थः– हे परंतप (शत्रुनाशी) मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है। मैंने यह विभूतियों का विस्तार संक्षेप में कहा है।

भावार्थः– भगवान अपने को अदिति के पुत्रों, मरूत नक्षत्रों, वेदों, इन्द्रियों, रुद्रों, यक्ष, राक्षसों, वसुओं, पर्वतों, पुरोहितों, सेनापतियों, महर्षियों, यज्ञों, वृक्षों, घोड़ों, हाथियों, शस्त्रों, सर्पों, नागों, दैत्यों, वायु, छलियों, कवियों आदि सबमें जो श्रेष्ठ हैं वे तथा दण्ड, मौन उत्पत्ति का कारण आदि सब प्रभु हैं –कहने के बाद कहते हैं कि मेरी दिव्य विभूतियाँ अनन्त हैं।

56

ना तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्य ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।। **9 ।15।**

अर्थः– तुम मुझको इन नेत्रों द्वारा देखने में समर्थ नहीं हो। इसलिए दिव्य चक्षु देता हूँ उससे तुम मेरे योग के ऐश्वर्य को देख सकोगे।

भावार्थः– प्रभु के दिव्य रूप का दर्शन बगैर तीसरी आँख–दिव्य चक्षु (विज्ञानमय कोष में मिलने वाली) के नहीं हो सकता। वो भी तभी खुलेगी जब स्वयं अथक मेहनत और गुरु कृपा से प्रभु कृपा प्राप्त कर सके।

57

पश्यामि देवांस्तव देव देहे,
सर्वास्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ
ऋषीश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।। **11।15।**

अर्थः– हे देव आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा भूत (जीवों) के समुदाओं को, कमल के आसन पर ब्रह्मा जी को, महादेव को और सब ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ।

भावार्थः– उस विश्व रूप में अर्जुन जैसे सुपात्र के पूज्य ब्रह्मा, शिवजी, अन्य देवता, ऋषियों तथा दिव्य सर्पों को देखने से यह सिद्ध हो जाता है कि सब कोई प्रभु से जनित, प्रभु में समाहित और प्रभु के ही अंग और रूप हैं यानी प्रभु का विश्व रूप सर्वोपरि है।

58

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा
शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
म्यैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।। **11।33।**

अर्थः– हे सव्यसाचिन (बायें हाथ से भी चलाने वाले) तुम उठो और इन शत्रुओं को जीतकर यश प्राप्त करो तथा राज्य, समृद्धि को भोगो। ये सब तो मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं। तुम केवल निमित्त मात्र हो जाओ।

भावार्थः– भगवान अर्जुन को इतना ज्ञान देने पर भी विश्वास न करा सके अतः एक भविष्यवक्ता की तरह उन्हें कहना ही पड़ा कि अगर तुम नहीं मारोगे तो भी यह सब मारे जायेंगे क्योंकि इनकी ऐसी गति मैं निर्धारित कर चुका हूँ। अतः तुम युद्ध करके यश कमाओ और केवल निमित्त मात्र होकर जो होना है उसे सत्य करो।

59

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीत्यां
जगत्प्रहष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्व नमस्यन्ति च सिद्धसंगा।। **11।36।**

अर्थः– हे हृषीकेश (इन्द्रियों के ईश्वर) आपकी कीर्ति से जगत हर्षित हो रहा है और प्रेम फैल रहा है। राक्षस (दुष्ट प्रवृत्तिगण) सब ओर भाग रहे हैं और सिद्धगण आपको नमस्कार कर रहे हैं।

भावार्थः– यह रक्षोघ्न मंत्र है। भूत प्रेतात्माओं (अतृप्त) को दूर भगाने का उच्च मंत्र है क्योंकि यह उन्हें प्रभु में रहने का स्थान ही नहीं दे रहा और प्रभु की कीर्ति व सिद्ध लोगों द्वारा स्तुति होने का चित्रण करता है।

60

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान।

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्य प्रतिमप्रभाव।। **11 ।43।**

अर्थः– आप इस चराचर जगत के पिता, गुरुओं के भी गुरु, अति पूज्यनीय, तीनों लोकों में अतुल्य प्रभाव वाले, आपके समान कोई दूसरा है ही नहीं तो प्रभु आपसे अधिक क्या है (कुछ भी नहीं है)

भावार्थः– यह हृदय से करी हुई परमात्मा स्वरूप कृष्ण की सर्वोत्तम प्रार्थना के भाव हैं।

61

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीडयम्
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।। **11।44।**

अर्थः– अतः मैं आपको प्राणिधान करता हुआ प्रणाम करके वंदना करता हूँ कि हे ईश्वर आप प्रसन्न हों। हे देव पिता जैसे पुत्र को, सखा जैसे सखा को, पति जैसे पत्नी को सहन करते हैं उसी प्रकार मेरे को भी क्षमा कर दें।

भावार्थः– यह प्रार्थना की अगली कड़ी है जिसमें पूर्ण समर्पण पूर्वक विनती और अपने सारे दुवर्चनों को, दुर्व्यवहारों को क्षमा करवाने की प्रार्थना है। इसमें तीनों भाव यानी वात्सल्य, सखा और प्रेमी के उत्कृष्ट उदाहरण लेकर क्षमा मांगी है।

62

नहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रुष्टवानसि मां यथा।। ।11।53।

अर्थः– इस प्रकार तुमने देखा कि मैं न वेदों से, न तप से, न दान से, न यज्ञ से ही देखा जा सकता हूँ।

भावार्थः– भगवान बहुत साफ शब्दों में कह रहे हैं कि केवल (यानी प्रेम भक्ति रहित) वेदपाठन, तप दान और यज्ञ (पूजन) आदि से मैं प्राप्य नहीं हूँ यानी इनसे मेरा दर्शन नहीं मिल पायेगा।

63

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।। 11 ।54।

अर्थः– परन्तु हे परंतप (महाबाहु) अर्जुन अनन्य भक्ति द्वारा मैं प्रत्यक्ष दृश्य हूँ। और उसी से मुझको तत्व से जाना व मेरे में प्रवेश किया जा सकता है।

भावार्थः– अनन्य (निरंतर) प्रेमपूर्वक चिंतन व भक्ति (जिसमें उनको सर्वदा साथ रखना महसूस किया जावे) तो उनका तत्वज्ञान व उनमें मिट जाने की कृपा प्राप्त हो सकती है। यह पिछले श्लोक का पूरक है।

64

मेय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।। 12 ।2।

अर्थः– जो मुझमें मन को लगाकर निरंतर अति श्रद्धा युक्त होकर मुझको भजते हैं उनको मैं योगियों में उत्तम मानता हूँ।

भावार्थः– अर्जुन के इस प्रश्न पर कि व्यक्त (सगुण) व अव्यक्त (निर्गुण) किस रूप की आराधना श्रेष्ठ है का सीधा उत्तर भगवान ने इसमें दिया है परन्तु तीन शर्ते हैं। एक निरंतर मन लगा हो, अति उच्च श्रद्धा में मुझे (केवल शरीरधारी ही न मानकर) ध्याते हैं वे योगियों में उत्तम हैं।

65

क्लेशो ऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ताहि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।। 1 12 ।1 5।

अर्थः– उन अव्यक्त (निराकारी) रूप में आसक्ति वाले साधकों को क्लेश (कष्ट) विशेष है क्योंकि उस मार्ग में कष्टपूर्वक गति है।

भावार्थः– भगवान साथ ही ये भी कहते हैं कि अव्यक्त रूप में लगने से कष्ट अधिक है यद्यपि वे निराकार अक्षर ब्रह्म वाले (जैसे प्रणव वाले) भी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

प्रवचन गुरुदेवः डा.श्रीकृष्ण लालजी महाराज

मौन

परमार्थ में मन की चंचलता सबसे अधिक कठिनाई उपस्थित करती है। पिछले संस्कार व अब जो कार्य मनुष्य करता है तथा वह जिस वातावरण में रहता है, वे उसके मन का स्वरूप बन जाते हैं तथा मन में नित्य हलचल पैदा करते हैं। मन की अवस्था की बन्दर से तुलना करते हैं– यह कभी चैन से नहीं बैठता। मन की स्थिरता के पश्चात्त ही मौन की प्राप्ति हो सकती है। महापुरुष परमार्थ के पथ पर चलने से पहले साधक के मन को निर्मल करते हैं तथा उसको एकाग्र करने के उपाय करते हैं। इसके कई साधन हैं। जब तक मन मौन नहीं होगा, अन्तर में ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा। जब जल में वायु के वेग के कारण हलचल आ जाती है तो सूर्य का प्रतिविम्ब जल में ठीक प्रकार से नहीं पड़ता। इसी प्रकार से जब तक मन स्थिर नहीं होगा तथा शुद्ध नहीं होगा, तब तक आत्मा का प्रकाश नहीं होगा।

मन को स्थिर करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य वाद–विवाद में न पड़े। वाद–विवाद दो प्रकार का होता है– एक बाहर का अर्थात मित्रों अथवा दूसरे व्यक्तिओं से तथा दूसरा जो मन अन्तर में स्वयँ ही अपने आप वाद–विवाद करता रहता है। बाहर के वाद–विवाद को तो मनुष्य दूर कर भी ले परन्तु मन के अन्तर के वाद–विवाद को समाप्त करना अति कठिन है। इसके लिए कभी–कभी मौन व्रत रखना लाभदायक है।

अधिक बोलने से भी मन अशांत हो जाता है। जितना कम बोला जाए उतना मन कम चंचल होगा। अकारण बोलना व्यर्थ है। एक तो मन चंचल होता है, दूसरे अधिक बोलने वाला कभी कोई सही बात नहीं करेगा। कम बोलने वाले की बात में कुछ भाव होगा और उसका प्रभाव सुनने वालों पर पड़ेगा। अधिक बोलने से अन्तर की शक्ति कम हो जाती है। परमार्थी को तो कम से कम बोलना चाहिये।

साधारण व्रत से शरीर स्वच्छ होता है, परंतु विरक्ति (detachment) से मन की शुद्धि होती है। ऐसे गुणों को अपनाना जैसे ईश्वर में विश्वास रखना, दान–पुण्य करना, संयम से रहना, विनम्रता तथा सबसे प्रेम करना– ये सब मन को शुद्ध करते हैं। मन के शुद्ध होने पर ही एकाग्रता सम्भव हो सकती है। तब ही मौन की प्राप्ति होती है। परन्तु इस मौन से आगे की एक और स्थिति है। मौन स्थिति में परमार्थी अपने आप को ईश्वर के चरणों में अर्पण करता है और अनुग्रह करता है कि उसको ईश्वर के दर्शन हो जायें या वास्तविक ज्ञान का अनुभव हो जाये पर ऐसा होता नहीं। यह अवस्था परेशानी उत्पन्न कर देती है। ऐसे मौन में कुछ शून्य सी अवस्था हो जाती है। ऐसी अवस्था में कोई रास्ता नहीं मिलता। कोई परमार्थी यहाँ से अपना रास्ता छोड़ देते हैं और वे नास्तिक बन जाते हैं। ऐसी अवस्था में गुरु की आवश्यकता होती है। जब यहाँ से गुरु निकालकर ईश्वर के चरणों में ले जाता है तब एक वास्तविक आनंदमय मौन की प्राप्ति हो जाती है तथा जब ऐसी स्थिति निरन्तर आती–जाती है तब परमार्थी ईश्वर में एक होता जाता है और माया से स्वतंत्र होता जाता है। उसे आत्मिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है जो वर्णन नहीं किया जा सकता। यह एक अनुभव का ही विषय है। प्रेम ही प्रेम है। वह ईश्वर में रहता है तथा उसकी अवस्था ईश्वर की अवस्था हो जाती है।

मन के अन्दर दो प्रकार के विचार सदैव रहते हैं– एक तो वे जो अन्तर में किसी की बुराई–भलाई करने से या ईर्ष्या से गांठ बना लेते हैं। ऐसे विचारों से मनुष्य अति दुःखी रहता है। इससे तो जैसे भी हो– ज्ञान से, भक्ति या सत्संग से, छुटकारा अवश्य पा लेना चाहिये। दूसरे वे विचार हैं जो साधारण होते हैं। विचार आता है और जल के बुलबुले के समान समाप्त हो जाता है। उसका कोई विशेष प्रभाव मन पर नहीं रहता। दोनों प्रकार के विचारों से मन को स्वतंत्र करना चाहिये अन्यथा अन्तर में शांति कदापि नहीं आयेगी।

आरम्भ में ईश्वर के गुणों को तथा महापुरुषों के समीप बैठ कर उनके आचरण की नकल करने से मौन धारण करने का प्रयास करना चाहिये अर्थात् सतोगुण अपनाना चाहिये। परंतु यह भी सोने की जंजीर है। अन्त में मौन गुणातीत होना चाहिये अर्थात निरोध अवस्था में पहुँचना चाहिये। कोई विचार न रहे, कोई विक्षेप न रहे। आत्मा के अतिरिक्त और कुछ न हो। प्रारम्भ में यदि गुणातीत होने का प्रयत्न किया जायेगा तो जड़ अवस्था आने की सम्भावना है। इसलिए धीरे–धीरे मन को स्वच्छ करना चाहिये और ईश्वरीय गुण अपनाने चाहिये। जब सतोगुण आ जाते हैं तथा मन स्थिर हो जाता है तो मन स्वयँ गुणातीत होकर एकाग्र हो जाता है।

मन में विक्षेप इसलिए होता है कि यह निरन्तर वर्तमान की तुलना भूत से तथा भविष्य में जो होने वाला दुःख–सुःख है उससे करता रहता है। यह तुलना मन में कश्मकश लाती है और यही बुराई का कारण है। जो कुछ बीत चुका है वह तो लौट नहीं सकता और जो कुछ आना है उसका कुछ पता नहीं। यदि हमें कुछ चिन्ता करनी चाहिये तो वह वर्तमान स्थिति की होनी चाहिये। वर्तमान को हम बुद्धि या भक्ति के द्वारा सुलझा सकते हैं। मन तभी शाँत हो सकता है जब हम वर्तमान स्थिति को समझ कर उससे भी स्वतंत्र हो जायें। मन तो अपने आप को मकड़ी के जाल की तरह जकड़ता रहता है और इस प्रकार अपने आप को दुर्बल कर लेता है। अन्तर और बाहर की शक्तियाँ इसको अपने वश में कर लेती हैं। इसलिए मौन ही एक ऐसा साधन है जिससे वास्तविक शांति मिल सकती है। विचार मन को अशाँत करते हैं। कहने को तो यह सब साधारण प्रतीत होता है परन्तु मन को मौन करना अति कठिन है।

परमसंत डा.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

साधन

प्यार तो आप भी करते हैं– स्त्री को स्त्री की तरह, पुत्र को पुत्र की तरह और दूसरों को अपनी–अपनी हैसियत के मुताबिक। लेकिन इसका भाव बदलो। भाव बदलने पर प्यार तो वही रहेगा, लेकिन फ़र्क़ इतना हो जायेगा कि तुम सबको ईश्वर का समझ कर प्यार करोगे। अभी अपना समझ कर प्यार करते हो, इसमें बन्धन होता है, उसमें मोक्ष होती है।

❖❖❖❖❖

जब दुनिया और दीन की सब चाहों में आग लगाई जायेगी केवल एक चाह मालिक से मिलने की ही शेष रहेगी और मनुष्य के सब व्यवहार, आंतरिक और बाहरी उसी के अर्न्तगत होंगे, सब पापों का नाश हो जायेगा तब मालिक के दर्शन होंगे।

❖❖❖❖❖

Blind Faith (अन्ध विश्वास) शुरु–शुरु में करना ही पड़ता है। किसने अपने बाप को देखा है कि यह मेरा बाप है ? सिर्फ माँ के कहने पर मान लेता है कि यह मेरा बाप है। बच्चे से माँ कहती है– ''कौआ'' और वह मान लेता है कि ''कौआ'' है। गुरु ने कहा कि ईश्वर है और शिष्य ने मान लिया, तब फ़ायदा होगा। Algebra (बीजगणित) में X न माने तो सवाल नहीं निकलता। दुनिया के मामले में भी विश्वास करना ही पड़ता है। विश्वास पर ही सारा लेन–देन और लौकिक व्यवहार चलता है। अगर अंग्रेजी पढ़ने जाओ तो अध्यापक कहेगा– ''कहो ABCD'' अगर आप कहें कि, मैं ABCD क्यों कहूँ, कुछ और क्यों न कहूँ तो मामला बिगड़ जायेगा। फिर तो अंग्रेजी पढ़ ली। पढ़े लिखों में Blind faith (अन्धविश्वास) नहीं आता। इसलिए सबसे ज़्यादा दिक़्कत पढ़े लिखों को Mould (सुधार) करने में आती है। एक तो वे यह समझते हैं कि दुनिया में धोखा बहुत है और

फिर हर चीज़ को वे अपनी अक़्ल पर तौलते हैं। जब तक अभ्यास करके मन शान्त न हो जाये और आत्मा का ज्ञान न खुलने लगे तब तक तुम यह नहीं समझोगे कि जो कुछ गुरु कहता है वह सही है। जब तक बुद्धि शुद्ध न हो जाए तब तक गुरु की बात पर Blind Faith करना ही पड़ेगा।

❖❖❖❖❖

सारा अभ्यास मन का है। मन की ही चौकीदारी करो। उसे तम से उठाकर रज पर और रज से सत् पर ले जाओ। बुरे ख़्यालों से उसे हटाकर अच्छे ख़्यालों में लगाओ। अगर बुरे ख़्याल आते हैं तो नाम का उच्चारण करने लगो। ख़्यालात पुराने संस्कारों का नतीज़ा हैं, जिन्हें रोकना अपने बस की बात नहीं है, उन्हें पलट दो। मन के ख़्यालों को पलट कर दुनिया की बजाय ईश्वर की तरफ़ लगा दो। साथ-साथ यह भी समझ लो कि जो भी हो रहा है, उसकी कृपा है। दोनों तरीक़ों को अपनाओ। बिना दुनिया को छोड़े ईश्वर से प्यार नहीं होगा। बिना प्यार के दुनिया की चीजें नहीं छूटेंगी। यही आपके यहाँ का तरीक़ा है, यही सत्संग है।

❖❖❖❖❖

असली आनन्द वह है जिसे प्राप्त करने के बाद किसी दूसरे आनन्द की ख़्वाहिश न हो।

❖❖❖❖❖

परमार्थ के लिए प्रयत्न करना होगा। ईश्वर के सामने दीन बनना पड़ेगा। दीन बनना यह है कि ईश्वर (गुरु) के हुक्मों पर यानी धर्म और सत् पर चलना। दीनता आने पर ईश्वर-प्रेम जागेगा, ईश्वर-कृपा होगी और ईश्वर-कृपा होने पर परमार्थ बनेगा।

❖❖❖❖❖

भाव को बदल कर स्वभाव बना लो। इन्द्रियों में उतना फँसो जितना मज़बूरी की वजह से हो, उनका आनन्द प्राप्त करने के लिए उसमें व्यवहार मत करो। औलाद पैदा करो, Nation (राष्ट्र) के लिए न कि इन्द्रिय भोग

के आनन्द की ख़ातिर। सब चीज़ें क्नजलंेाम (कर्तव्य मात्र) भोगनी चाहिए, यही धर्म है। जो मनुष्य इन्द्रिय–भोग में फँसा है, वह मन से (जो उससे कहीं अधिक बलवान है) कैसे अपने आप को हटायेगा ? आत्मा मन की कैद से न्यारी होकर ऊपर कैसे चढ़ेगी ? तम और रज से निकल कर सत् पर आओ, तुम्हारे अन्दर नेकी ही नेकी हो जाये, सच्चाई ही सच्चाई हो जाये, बुराई लेशमात्र भी न रहे, तब परमार्थ का रास्ता खुलता है।

❖❖❖❖❖

मन तो उधर ही जायेगा जिधर वह सारे दिन लगा रहता है। मन को उधर से हटाओ। विवेक बुद्धि से काम लो। सोचो, कि दुनिया की वे सब वस्तुऐं, जिनमें तुम आनन्द लेते हो, नश्वर हैं। कुछ तो नाश हो चुकी हैं, कुछ नाश हो रही हैं। उनसे अपना मन हटाओ। सख़्ती से काम लो और बुराई से हटकर सत् पर आओ। मन में ख़्वाहिशें उठती हैं, बुद्धि उसका साथ देती है और इन्द्रियाँ उस काम को पूरा करती हैं। जब सब तरफ़ से मन को खींच कर ईश्वर की तरफ़ लगाओगे तब तबियत लगेगी।

❖❖❖❖❖

धर्म शास्त्र के अनुसार रहनी सहनी बनाना और ऐसे काम करना जो ईश्वर–प्राप्ति में सहायक हों, और एक ईश्वर को ही प्यार करना 'अनुराग' है।

❖❖❖❖❖

सन्त निर्विकल्प समाधि का अनुभव करने के बाद भी अपने सगुण ईश्वर (यानी गुरु के ध्यान) के स्थान पर उतर आते हैं यानी परमात्मा का अनुभव करने के बाद भी उस स्थान से नीचे उतर कर ईश्वर का दर्शन अपने गुरु–रूप में करते हैं और गुरु को ईश्वर रूप मानते हैं। गुरु मूर्ति ही उनके लिए परमात्मा का सगुण रूप है। इसी जगह गुरु की अहमियत (महानता) का पता लगता है और असली श्रद्धा आती है। ऐसे लोग कभी

ईश्वर के निराकार रूप का अनुभव करते हैं और दुनियावी काम के लिए, जो बग़ैर मन की सहायता के नहीं हो सकता, ईश्वर के साकार रूप यानी गुरु के प्रेम का आनन्द लेते हैं।

❖❖❖❖❖

गुरु ने जो इरशादात (वचनामृत) किये हैं वे ही महावत हैं, हम सब अनुगामी (विससवूमत) हैं। अगर शिष्य ने उन्हीं को अपनी ज़िन्दगी का रहबर (पथ प्रदर्शक) बना लिया है तो एक न एक दिन वह उनमें पूरी तरह लय हो जाता है। इसी को (सूफ़ियों में) 'निस्बत' कहते हैं। जो शक्ति और गुण गुरु में होते हैं ठीक वैसे ही शिष्य में उतर आते हैं। वहाँ अपनी बुद्धि और चतुराई से काम नहीं चलता। गुरु–वचन को ही ब्रह्म–वाक्य माने और जिस तरह वे चलायें उसी तरह चले। यदि अपनी बुद्धि और चतुराई को सामने लायेगा तो फ़नाइयत (लय होने) में कमी होगी। जहाँ शिष्य मन के स्थान पर आ गया और मनमानी करने लगा वहाँ सिलसिला ख़त्म हो जाता है।

❖❖❖❖❖

आदमी की ज़िन्दगी का आदर्श यह है कि वह अपनी असल सत्–चित्–आनन्द से मिल कर स्वयँ सत्, चित्, आनन्द हो जाये। इसका साधन यही हो सकता है कि लौकिक और पारलौकिक जीवन को एक सा बनाये, यानी जिसका ध्यान अन्दर करता है उसी को बाहर देखे। अन्दर बाहर एक ही शक्ति एक ही परमतत्व का अनुभव करे। एक में अनेक और अनेक में एक को देखे। अपने में जगत और जगत में अपने को देखे। हर जगह उसी एक परमतत्व का अनुभव करे। हरेक चीज़ के साथ, चाहे उसका ज़ाहिरी रूप कैसा ही क्यों न हो उसमें उसी परमतत्व को अनुभव करे।

प्रवचन परमसंत डॉ.करतार सिंहजी साहब

समय थोड़ा है

मनुष्य शरीर ही एक ऐसा उपकरण है जिसके बिना आत्मा या परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता है। देवतागण भी ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें मनुष्य चोला मिले ताकि वे मोक्ष का साधन कर सकें। केवल इस मनुष्य रूपी उपकरण से ही आध्यात्मिकता का साधन हो सकता है। ईश्वर कृपा से हमें जो मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है, हमें उसका सद्उपयोग करना चाहिये। परन्तु हमने इसको आलसी बना दिया है, संसार में मोहग्रस्त हो रहा है। शरीर और इंद्रियों के सुःख में फँसा हुआ है। कुछ बुद्धि से विचार करने लगता है तो मन के विकारों में फँस जाता है।

कबीर साहब कहते हैं कि साधना, बुद्धि का विकास, आध्यात्मिक पढ़ाई, ये सब तो बचपन से ही शुरू कर देनी चाहिये। यदि किसी कारण बचपन निकल गया, युवा अवस्था आ गई तो अब हमें होश में आना चाहिये। युवा अवस्था भी निकल गई, जरा अवस्था यानी बुढ़ापा आ गया, मृत्यु सामने दीख रही है। अब हमें होश आना चाहिये। तब भी होश नहीं आया, यमराज के दूत आ गए, अब तो कुछ कर लो। मनुष्य का स्वभाव ऐसा बन गया है कि वह शरीर से भले ही दुःखी हो, आर्थिक कठिनाइयाँ हों, संसार जूते लगाता हो, फिर भी वह संसार से इतना मोहग्रस्त होता है कि वह मरना नहीं चाहता है .

कोई व्यक्ति मरना नहीं चाहता। हमारी आयु कट रही है। किसी वक्त भी मौत के मुँह में गिर सकते हैं। इस संसार में चारों तरफ उत्तेजनायें हैं, कोई सुःख नहीं है, फिर भी मनुष्य को होश नहीं है। वह सांसारिक सुखों के क्षणिक आनन्द में लिप्त है।

हम यह जानते हैं कि मृत्यु कुछ नहीं है, यह जीव एक शरीर छोड़कर दूसरा बदलता है, परन्तु फिर भी व्यक्ति उससे डरता है। कैसी यातनायें

मिलेंगी, कैसी मृत्यु होगी। सुःख की कोई नहीं सोचता, दुःख की ही सोचता है। मन में पाप भरे होते हैं। इन्सान अगर बैठकर सोचने लगे कि बचपन से लेकर अब तक मैनें कितनी गलतियाँ की हैं तो वो पागल सा हो जाता है। मौत के वक्त वो सामने आ जाती हैं। इसीलिये प्रत्येक व्यक्ति मौत से बहुत घबराता है। तो पहला काम जो हमें करना है वह यह है कि हमें सचेत हो जाना है। यह साधना का श्री गणेश है, परन्तु हम गुरु कृपा के बिना पूर्ण रूप से सचेत नहीं हो पाते। हम जान बूझकर माया की निद्रा में फँसे हुए हैं। माया भी कई प्रकार की होती है– पैसा, स्त्री, बच्चे, सम्बन्धी ये भी माया हैं और हमारे भीतर में जो विचार उठते रहते हैं वे भी माया का रूप ही हैं। अधिकतर व्यक्ति अपने विचारों में ही त्रस्त रहता है। इस माया से छूटना बड़ा मुश्किल है। संध्या में बैठकर उपासना करते हैं– कहते हैं साहब, क्या करें ? विचार आते रहते हैं।

जीव भी क्या करे ? कमजोर है। अपने बलबूते से निकलना बड़ा कठिन है। यदि भीतर में सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है, व्यक्ति सचेत हो जाता है, रोता है, तब भगवान की कृपा से ऐसा व्यक्ति मिल जाता है, जो हमें रास्ते पर लगा देता है और अपना बल हमें देता है। उसको हम 'गुरु' कहते हैं। वह हमारा मार्ग दर्शन करता हैं, हमें रास्ता बतलाता है कि हम किस प्रकार से माया से मुक्त हों।

गुरु महाराज (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) बताया करते थे कि मनुष्य चोला यदि लगातार चार–पाँच बार मिलता है और इन चारों–पाँचों जन्मों में यदि व्यक्ति आलस्य, प्रमाद को छोड़कर खोज करता रहे, सचेत होकर प्रभु के चरणों में रोता रहे, तब जाकर कहीं गुरु मिलता है। सच्चा गुरु जो होता है वह परमात्मा ही होता है। गुरु और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है।

गुरु यदि मिल भी जाय तो उसकी पहिचान कैसे हो ? सच्चा गुरु कौन है और दूसरा (झूठा) गुरु कौन है ? कबीर साहब ने अपनी वाणी में

सच्चे गुरु और दूसरे व्यक्तियों की पहिचानें बताई हैं। सच्चा गुरु वही है जिसमें शास्त्रों में वर्णित वे गुण हों जो हम महापुरुषों में सुनते आये हैं। कबीर साहब सावधान करते हैं कि परख करने में गलती न हो। जिस प्रकार गुरु शिष्य की परीक्षा लेता है उसी प्रकार शिष्य को भी अधिकार है कि वह गुरु की परीक्षा ले। गुरु के पास बैठने पर शान्ति मिलती है या नहीं, मन एकाग्र होने लगता है या नहीं, बिना गुरु के श्रीमुख से कहे हमें हमारी त्रुटियाँ दिखने लगतीं हैं या नहीं, उनके पास बैठने से हमें अपनी बुराईयों को छोड़ने की प्रेरणा मिलती है या नहीं और उनके पास बैठने से बुराइयाँ छूटती भी हैं कि नहीं ?

जब तक भीतर से बुराइयाँ नहीं छूटेंगी, विकार दूर नहीं होंगे, मन स्थिर नहीं होगा, शान्त नहीं होगा, आप चाहें जितनी उपासना करते रहें आपको अपने स्वरूप का, परमात्मा का, गुरु के वास्तविक रूप का साक्षात्कार नहीं हो सकता। विकार छूटने चाहिये। उस महान व्यक्ति (गुरु)के पास बैठने से क्या हमारे विकार सामने आते हैं और क्या उसके पास बैठने से हमारा मन शान्ति, आनन्द और सुःख की अनुभूति करता है ? यदि ऐसा है तो सोचना चाहिये कि हो सकता है कि वह व्यक्ति हमारे आदर्श की प्राप्ति में सहायक हो। और आगे बढ़िए, देखिए वह व्यक्ति पैसे का, सम्मान का भूखा तो नहीं है ? हाथ–पाँव की सेवा कराने का इच्छुक तो नहीं है ? लालची तो नहीं है ? स्वयं माया में ग्रस्त तो नहीं है ? उनका जीवन आदर्श है या नहीं ?

तो गुरु करने से पहले गुरु की पहिचान कर लेनी चाहिये, इसमें कोई हर्ज नहीं है। किन्तु, एक बार गुरु धारण करके फिर उनमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास ले आना चाहिये। कबीर साहब ने ईश्वर की तुलना में गुरु का दर्जा बड़ा बताया है क्योंकि गुरु हमें ईश्वर से तद्रूप करा देते हैं। उनका विश्वास है कि बिना गुरु के माध्यम के ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए उन्होंने गुरु को मुख्य रखा है। गुरु और ईश्वर एक हैं। ईश्वर ही गुरु में पूर्ण रूप से समाया हुआ है। गुरु में ईश्वर रूपी ज्योति जगमगा रही है। भगवान कृष्ण गीता में विश्वास दिलाते हैं कि जब भी संसार में असन्तुलन

होता है, परमात्मा स्वयं मनुष्यों के उद्धार के लिए आते हैं। ऐसी ही महान आत्मायें गुरु रूप धारण करके उद्धार के लिये आती हैं।

यदि सच्चा गुरु मिल गया तो फिर क्या करना है ? सेवा किस प्रकार की होनी चाहिए ? हाथ पाँव की ? नहीं ऐसी सेवा उसे नहीं चाहिये। वो चाहेगा कि आप अपने आदर्श के प्रति सदा जागृत रहें। उस आदर्श की प्राप्ति के लिए वह कुछ उपाय बतायेगा। इन उपायों को सोच समझकर, उसके उपदेशों का पालन करना, यही गुरु की सर्वोत्तम सेवा है। पैसे की सेवा साधारण सेवा है, हाथ पाँव की सेवा उससे कुछ और अच्छी है, परन्तु गुरु के आदेशों को बिना शंका के, शत–प्रतिशत बिना चूँ–चरा किये पालन करना ही सर्वोत्तम सेवा है। ऐसी सेवा से ही मनुष्य का उद्धार हो जाता है।

गुरु का सत्संग मिले, यह तो सर्वोत्तम है। यदि न मिले तो जो गुरुमुख हैं, रास्ता काफी चल चुके हैं और आत्मा का साक्षात्कार करने वाले हैं, उनका संग करना चाहिये। वो नहीं हैं, तो जो ईश्वर का नाम लेवा हैं, चाहे वो किसी भी संप्रदाय के हों, उनका संग करें। यदि वे भी नहीं मिलते तो गीता, रामायण, गुरु ग्रन्थ साहिब, वेद उपनिषद जैसे शास्त्रों का, जिनमें भी हमारी श्रद्धा हो, अध्ययन करना चाहिये। नौ प्रकार की भक्ति में से यह भी एक प्रकार की भक्ति हैं। तो कुछ न कुछ करना चाहिये। ऐसा करते–करते धीरे–धीरे हमारी श्रद्धा बढ़ती चली जायगी और परमात्मा ने चाहा तो उसकी प्राप्ति जल्दी ही हो जायेगी।

कहने का मतलब यह है कि समय को व्यर्थ नहीं गँवाना है। प्रत्येक व्यक्ति यह समझे कि उसका थोड़ा सा ही समय शेष रह गया है। यह याद रखना चाहिये कि मृत्यु को किसी का लिहाज नही है। परमार्थ के पथ पर चलना प्रारम्भ कर देना चाहिये। साथ ही साथ ईश्वर की कृपा के लिए भी प्रार्थना करते रहना चाहिये।

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

हयहया

तपस्वी हयहया रीडस के रहने वाले थे। वे बहुत ही आशवादी थे, इसलिए वे बहुत ही कठिन साधना प्रसन्न मन से कर सके थे। उनका एक भाई था जो मक्का में रहता था। उसने अपने एक पत्र में लिखा– ''मेरी तीन मंशायें थीं उनमें से दो तो पूरी हो गईं और अभी एक बाकी है। उसकी सफलता के लिए तुम भी प्रार्थना करना। मेरी पहली मंशा थी कि जीवन का आखिरी भाग किसी पवित्र भूमि में बिताऊँ। मैं आजकल मक्का के पवित्र तीर्थ में रहता हूँ। मेरी दूसरी मंशा थी कि मुझे जो चाकर मिले वह मेरी पूरी सेवा करे और उपासना के समय मुझे वजू के लिए पानी ला दिया करे। मुझे एक होशियार दासी मिल गई है और उसकी खिदमत से मुझे संतोष है। अब मेरी तीसरी मंशा है मरने के पहले आपका दर्शन करने की, उम्मीद है भगवान एक दिन उसे भी पूरा करेगा।''

उत्तर में तपस्वी हयहया ने लिखा– ''अच्छी जगह पाने की आपकी मंशा पूरी हुई यह देखकर संतोष न मानना। भाई, अपने आपको पवित्र करके चाहे जहाँ रहो, कारण जगह से मनुष्य में पवित्रता नहीं आती किन्तु मनुष्य से स्थान में पवित्रता आती है। जहाँ साधुजन रहते हैं वह स्थान श्रेष्ठ है, तीर्थ रूप है।''

दासी पाकर तुम संतुष्ट हो ? तुममें पुरुषार्थ होता तो एक ईश्वर के दास को तुम अपना दास बनाने की इच्छा भी नहीं करते। उससे ईश्वर की गुलामी छुड़ाकर तुम उससे अपनी गुलामी नहीं करवाते। तुम्हे तो खुद गुलाम होना चाहिए और तुम बनने चले हो मालिक । मालिकी में मौज–शौक और विलास है, गुलामी में है सेवा। जो गुलाम खुद मालिक बनने की मंशा रखता है वह ईश्वर का भक्त कैसा ?''

''और तुम मुझसे मिलना चाहते हो। ईश्वर पर तुम्हारी नज़र होती तो

मैं बीच में आता नहीं। ईश्वर के साथ ऐसा गहरा नाता जोड़ो कि मैं अथवा और कोई उसके बीच में आने ही न पावे। जहाँ अपने बेटे की कुर्बानी करनी पड़ती है वहाँ दूसरे लोगों की क्या गिनती ? यदि तुम्हें परमेश्वर को पाना है तो मैं तुम्हें क्या लाभ पहुँचाता ? और यदि तुम्हें परमेश्वर को नहीं पाना है तो भी मैं क्या काम आता ?''

एक दूसरे बन्धु को हयहया ने इस मतलब का पत्र लिखा– ''संसार सपना सा है और परलोक है जागी हुई हालत सा। मनुष्य सपने में अपने आपको रोता तथा दुख पाता देखता है पर जागते ही वह हँसता है, आनन्द मनाता है। तुम भी संसार के सपने में खूब रोओ, जिससे परलोक में जागने से खूब हँस सको, आनन्द मना सको।''

महर्षि हयहया के एक छोटी पुत्री थी। एक दिन वह अपनी माँ से 'माँ! मुझे यह दे, वह दे।' कहकर कई चीजें माँगने लगी तो माँ ने कहा ''उस प्रभु से माँग!'' इस पर पुत्री ने उत्तर में कहा– ''माँ! इन छोटी जरूरियातों के लिए ईश्वर से माँगते हुए मुझे शर्म आती है, ये चीज़ें तो तू ही दे दे। और तू जो देगी वह भी तो उसी का है।''

एक बार महर्षि अपने भाई के साथ एक गाँव से गुज़र कर दूसरे गाँव की ओर जा रहे थे। उस गाँव को देखकर उनके भाई ने कहा– ''अहा! यह गाँव कितना खूबसूरत है।''

हयहया बोले – ''जो इतने खूबसूरत गाँवों को देखकर भी नहीं लुभाता उसका मन तो इससे भी अधिक खूबसूरत होना चाहिए।''

हयहया न्यौता पाकर अपने पड़ोसी के यहाँ खाना खाने गये। उनको कम खाते देखकर पड़ोसी ने उनसे और मिठाई खाने का आग्रह किया तो उन्होंने कहा– ''भाई! इन्द्रियाँ बदमाश घोड़े की तरह हैं, वे तो मौका देखती ही रहती हैं, इसलिए मैं सदा अपनी साधना रूपी लगाम सतर्क होकर थामे रखता हूँ। यदि इस लगाम को तनिक भी ढीली कर दूँ अथवा एक आध चाबुक लगा दूँ तो कौन जाने यह दुष्ट सवारी मुझे किस गढ़े में ले जाकर डाल दे।''

एक रात को उनके सामने का दीपक हवा से बुझ गया। यह देख महात्मा रोने लगे। ऐसी छोटी सी बात पर रोने का कारण पूछने पर उन्होंने कहा– ''इस बाहरी दीपक के बुझने पर मैं थोड़े ही रोता हूँ? प्रभु के प्रति श्रद्धा भक्ति का दीपक हृदय में थोड़ा थोड़ा जलने लगा है, अविवेक अथवा स्वछन्दता की हवा के झोके से यदि वह बुझ जाये तो कैसा बुरा हो?''

एक बार उनके सामने दौलतमंदी और गरीबी की चर्चा चली। उसे सुनकर वे बोले – ''परलोक के जीवन में न तो दौलत की कमी है और न गरीबी की। वहाँ तो कीमत है कृतज्ञता और सहिष्णुता की। धनवान होकर प्रभु का उपकार मत भूलो और गरीबी की हालत में सहनशीलता को मत छोड़ो।''

महात्मा हयहया ने प्रभु की इस प्रकार प्रार्थना की थी– ''हे प्रभु! मैं पुण्यवान होकर तुमसे जितनी आशा रखता हूँ, उससे अधिक पापी होकर रखता हूँ। मैंने शुद्धभाव से तेरा भजन पूजन किया है ऐसा मैं नहीं मानता। पवित्र प्रेम से मैं तेरी भक्ति कैसे करता? मैं तो एक दुराचारी ठहरा। मैं तो अपने आपको तेरा गुनहगार समझता हूँ, पर तेरी क्षमा में मेरा पूरा विश्वास है। तू प्रसिद्ध दयालु है, क्या मेरे गुनाहों की माफी नहीं देगा। हे खुदा! तूने अपने प्रीतिपात्र मूसा और हारुन को पाखण्डी शत्रु फेरुन के पास भेजकर कहा था– 'हे मूसा, हे हारुन, तुम फेरुन के पास जाकर शांतभाव और मीठी वाणी से बात करना।' हे दयालु प्रभु! तेरा यह दया भाव किसके प्रति था ?एक ऐसे मनुष्य के प्रति जो ईश्वर बनकर ढोंग करता था। एक ऐसे मनुष्य के प्रति भी तेरा ऐसा भाव था तो जो सर्वभाव से तेरा भजन–साधन कर रहा है, उसकी ओर तो तू न जाने कितना दयालु होगा? हे नाथ! धन सम्पत्ति में तो मेरे पास यह एक फटा–पुराना कपड़ा है। यह मेरे बड़े काम का है, तो भी यदि कोई दीन दुखिया मिल जाये तो मैं यह कपड़ा बिना किसी पशोपेश के दे सकूँगा। तेरे पास तो हज़ारों इमारतें और बेशुमार साधन हैं और तुझे उनकी ज़रूरत भी नहीं। दूसरी ओर इस दुनिया में लाखों गरीब भटक रहे हैं। उनके पास रहने को झोपड़ा और खाने–पीने को फूटी कौड़ी

भी नहीं है। तो तू उन्हें ज़रूरी चीज़ें देने में इतना संकोच क्यों करता है ? क्या यह ठीक है ? हे प्रभु! तूने तो कहा है– 'जो आदमी मेरे पास कल्याण माँगेगा, उसका मैं कई गुना कल्याण करूँगा।' उसी वचन के भरोसे मैं तेरे पास आया हूँ। तुझसे अधिक अच्छा कुछ भी नहीं। बोल अपने दर्शन से अधिक अच्छा कौन सा दान तू मुझे देगा ? प्रेम करने वाले को सब तरह का सुख देने की कोशिश की जाती है, पर तू तो अपने प्रेमी पर विपत्तियों की ही बौछार करता है। हे प्रभु! इस दुनिया में तुझे मुझे जो कुछ भी देना हो वह सब विधर्मियों को दे दो। मेरे लिए तो इस लोक में तेरा भजन और उस लोक में तेरा दर्शन बस होगा। हे ईश्वर! मैं तो गुनहगार हूँ, तेरी प्रार्थना करता क्यों ठहरूँ ? मैं पाप करता भी हूँ तो तू अविचल भाव से कृपा करता रहता है। हे प्रभु! अपने दुष्कृत्यों के कारण मैं तुझसे डरता हूँ और तेरी कृपा के कारण आशा लगाये हूँ। मुझे दुराचारी समझकर अपनी दया से परे मत रखना। भगवन्! मैं तेरा हूँ, यही समझकर मुझ पर कृपा कर। तू तो दयालु है, तेरा डर कैसा ? मैं गुनहगार हूँ किस मुँह से अर्ज करूँ ? हे ईश्वर मैं तुझसे डरता हूँ, कारण मैं तेरा दास हूँ, मैं तुझसे आशा रखता हूँ, कारण तू मेरा पिता है। हे प्रभु! तू निष्काम होकर भी मुझ पर इतना प्रेम रखता है, तो मैं इतनी कामनाओं वाला तुझे क्यों न प्रेम करूँ ? मेरे हृदय में तूने जो प्रबल आशा और आस्था दी है वही तेरा उत्तम दान है और तेरा गुणगान करना ही मेरा उत्तम काम है। तेरे दर्शन की शुभ घड़ी ही मेरे लिए सर्वोत्तम समय है। हे प्रभो! मैंने मोक्ष के लिए तो अनुष्ठान किया है पर नरक में जाने की मेरी हिम्मत नहीं। ऐसी हालत में बस तेरी एक मेहरबानी ही का भरोसा है। कयामत के समय तू मुझसे पूछेगा कि मैं क्या ले आया हूँ, तो कहूँगा 'कैदखाने में से लाया हूँ, मैले कपड़े, बिखरे हुए दुर्गंधमय बाल और लज्जा। कैदखाने से इनके सिवा और ला भी क्या सकता हूँ। अब और बात न पूछकर अब तो पहले मुझे पाक करो, मुझे नये कपड़े दो।''

एक बार ज्ञानी और फकीरों की मदद करते–करते तपस्वी हयहया पर एक लाख का कर्जा हो गया। इस कर्ज को चुकाने का कोई उपाय न

देखकर उन्हें बहुत चिंता हुई। एक रात को उन्हें स्वप्न में हज़रत मुहम्मद साहब के दर्शन हुए। उन्होंने कहा– ''हयहया! खेद न कर। तेरे खेद से मुझे भी खेद होगा। तू खुरासान देश में जा। वहाँ तेरे लिए एक व्यक्ति ने तीन लाख मुद्रा इकठ्ठी कर रखी हैं।''

हयहया ने पूछा– ''हे पूज्य पैगम्बर महात्मा! वह व्यक्ति कौन है और कहाँ है ?'' पैगम्बर साहब ने जवाब दिया– ''तुझे और पूछताछ से क्या मतलब ? तू गाँव–गाँव घूमकर धर्म का उपदेश करता चला जा। तेरे उपदेश से अनेक लोगों के दिलों का मैल साफ होगा। जैसे मैंने तुझे दर्शन दिया है, उसी प्रकार उस व्यक्ति को भी दर्शन देकर धन देने के लिए कहता हूँ।''

इस स्वप्न की सफलता का हयहया को पूरा विश्वास था। वे खुरासान के नशापुर शहर में गये। वहाँ उपदेश देते समय एक दिन उन्होंने कहा– ''शहर के वाशिन्दों, पूज्य पैगम्बर साहब के हुक्म से मैं इस मुल्क में आया हूँ। उन्होंने मुझसे कहा है कि यहाँ एक व्यक्ति मुझे कर्ज से छुड़वायेगा। मेरे सिर पर एक लाख का कर्ज है। इस कर्ज के गुनाह में फँस जाने से मेरे उपदेशों का असर भी घट गया है।''

यह बात सुनकर श्रोताओं में से एक व्यक्ति बोला– ''उस कर्ज को चुकाने के लिए मैं आपको पचास हजार मुद्रा दूँगा।'' दूसरे ने चालिस हजार और तीसरे ने दस हजार मुद्रा देने का वादा किया।

हयहया ने यह रकम अस्वीकार कर दी क्योंकि उन्होंने कहा कि ''पैगम्बर साहब की सूचना है कि यह रकम किसी एक ही व्यक्ति से मिलेगी।''

'मेरा कर्ज यहाँ नहीं उतर सकेगा' ऐसा कहकर वह बल्ख चले गये। कई दिनों तक उपदेश देने के बाद उन्होंने एक दिन सम्पत्ति की श्रेष्ठता का वर्णन किया। इससे खुश होकर एक धनवान ने एक लाख का दान देना स्वीकार किया। उन श्रोताओं में एक फकीर भी था। फकीरी की अपेक्षा दौलत की अधिक बढ़ाई सुनकर उसे बहुत खेद हुआ। हयहया वह एक लाख मुद्रा लेकर स्वदेश की ओर लौट पड़े। किन्तु मार्ग में लुटेरों ने सारा धन लूट लिया। अब वे हेरी की ओर गये। वहाँ भी कई दिन तक उपदेश देने के बाद

उन्होंने अपने कर्ज और सपने की बात कही। उस समय वहाँ एक अमीर की बेटी हाज़िर थी। उसने कहा– ''आप अपने कर्ज की ज़रा भी चिंता न करें। हमारे पवित्र पैगम्बर साहब ने सपने में मुझे आपका कर्ज चुका देने का हुक्म दिया है । मैं तो बहुत दिनों से आपकी राह देख रही थी। मेरी शादी में मेरे पिता ने मुझे दहेज में सोने चाँदी के बहुत सारे जेवर दिये थे। उनमें से केवल चाँदी के जेवरों की कीमत ही तीन लाख है। वह सब मैं आपको भेंट करती हूँ।''

हयहया उस धन को सात ऊँटों पर लाद कर हेरी से विदा हुए। बलहम शहर में वह धन अपने बेटे को देकर उन्होंने कहा– ''अपने मुल्क में जाकर मेरे कर्ज को चुका देना और जो बाकी बचे उसे गरीबों में बाँट देना। इसमें से एक कौड़ी भी अपने काम में न लाना।'' हयहया खुद बलहम शहर में रह गये।

एक दिन सवेरे के समय वे सिर झुकाकर नमाज पढ़ रहे थे, इतने में एक दुष्ट ने आकर उनके सिर पर एक बड़ा सा पत्थर दे मारा। जिससे उनकी मृत्यु हो गई।

''मेरा कर्ज चुका देना'' मरते–मरते वे इतना ही कह पाये। उनके सारे शिष्य वहाँ आ पहुँचे। महात्मा हयहया के शव को अपने कँधे पर उठाकर वे नशापुर ले गये। वहाँ के कब्रिस्तान में वे दफन किये गये।

उपदेश वचन

- नरक के बीज बोकर स्वर्ग की आशा रखने से बड़ी मूर्खता और क्या होगी।
- पश्चात्ताप से दूर किया हुआ पाप यदि फिर बन पड़े तो वह पहले पाप से सौ गुना ज़्यादा नुकसान पहुँचाता है।
- रोग के डर से तो आदमी खाना बन्द कर देता है, परन्तु दण्ड और मरण के डर से पाप करना नहीं छोड़ता। यह कैसा आश्चर्य है ?

- सावधान रहना यह दुनियाँ शैतान की दुकान है। भूलकर भी इस दुकान की कोई चीज पर मन मत चलाना, नहीं तो शैतान पीछे पड़कर उस चीज़ के बदले में तुम्हारा धर्मरूपी धन छीन लेगा।
- दुनियाँ की इज़्ज़त आबरू शैतान की शराब है। इस शराब के नशे में चूर आदमी अपने पापों और पश्चात्ताप और आत्मग्लानी रूपी तीव्र तपस्या नहीं कर सकता और बिना उसके ईश्वर को नहीं पा सकता।
- दुनिया एक नौजवान औरत के समान है। जो मनुष्य उसकी कामना करता है, उसे अपना जीवन उसके लिए बढ़िया–बढ़िया गहने कपड़े जुटाने ही में बिताना पड़ता है। जो उसकी ओर से विरक्त रहता है वह उसका सिर मूड़ कर उसके मुँह पर कालिख पोत देता है।
- संसार लोलूप मनुष्य के लिए आगे पीछे शौक और चिंता ही है, उसे परलोक में भी सजा और पीड़ा ही मिलेगी। इसलिए उसे सुख शांति मिले तो कैसे ?
- ईश्वर ने कहा है– ''हे जीव! तू मेरी अपकीर्ति फैलाता है, यह क्या उचित है ? तू ही कह कि इस लोक और उस लोक का मालिक मैं क्या तेरी इस नीचता से तेरा हो सकता हूँ ?
- सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति में जीवन की अधोगति समाई है और पारलैकिक वस्तु की प्राप्ति में जीवन की उन्नति। जो वस्तु क्षणभंगुर है उसके लिए मनुष्य चिरकाल की अधोगति और दुर्दशा कमा लेता है, उसका विचार करके मैं तो चकित हो जाता हूँ।
- सांसारिक वस्तुएँ ऐसी अनिष्टकारक हैं कि उनकी इच्छा मात्र ईश्वर से दूर ले जाती है। यदि उन्हें कोई पा ले तो उसकी क्या हालत होगी इसका तो अन्दाजा भी नहीं किया जा सकता है।
- इन तीन मनुष्यों को बुद्धिमान जानना– जिसने संसार को त्याग कर दिया है, जो मौत आने के पहले सब तैयारियाँ किये बैठा है और जिसने पहले ही से ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त कर ली है।
- साधक तीन प्रकार के होते हैं– वैरागी, अनुरागी और कर्मयोगी। वैरागी का धर्म सहनशीलता, अनुरागी का धर्म प्रभु के प्रति कृतज्ञता और कर्मयोगी का धर्म सबके प्रति बन्धु भाव है।

- साधक के लिये सबसे अधिक सुखदायक बात कौन सी है ? विरोधियों की संगति सह लेना।
- निर्जनता में निवास करके देख कि तेरा प्रेम निर्जनता पर है या प्रभु पर ? यदि एकान्त से ही प्रेम है तो वहाँ से हटते ही प्रेम भी हट जायेगा, और यदि ईश्वर पर प्रेम होगा तो पर्वत, वन, बस्ती सब स्थानों पर वह एक समान रहेगा।
- शुद्ध हृदय के भक्तात्मा के साथ निर्जनता का तो सदा वास है।
- सच्चे धैर्य और प्रभु परायणता की परीक्षा तो विपत्ति में ही होती है।
- लौकिक पदार्थों में जब तक आसक्ति रहेगी तब तक धर्म का नाश होता रहेगा। जब वैराग्य स्थिर होगा तो ही धर्म स्थिर होगा।
- सौ वर्ष तक प्रभु प्रेम बिना तप करने की अपेक्षा इतना प्रभु प्रेम उत्पन्न करना अधिक उत्तम है।
- ज्ञान, संकल्प और प्रेम धर्म साधन की जड़ हैं।
- ईश्वर पर निर्भर रहकर ही दुनियाँ की गुलामी से छूटा जा सकता है। धर्म के अनुष्ठान से जो फल मिले उसे भी प्रेम के लिए विसर्जन कर दो। ईश्वराज्ञा का पालन करने पर ही सच्चा आनन्द मिलेगा।
- धर्म के तीन अंग हैं– भय, आशा और प्रेम। भय में पाप छुड़ाने की शक्ति, आशा में साधना के द्वारा पारलौकिक उन्नति करने की शक्ति और प्रेम में दुःख सहन करने की शक्ति है।
- सच्चा साधक वही है जिसे ईश्वर के विचार के सिवा दूसरी बात प्रिय ही नहीं लगती।
- ईश्वर का भय एक ऐसा वृक्ष है जिसके प्रार्थना और आर्तनाद रूपी दो परमसुखदायक फल हैं।
- जो मनुष्य प्रभु का भय रखता है, उसके सब अवयव साधना की ओर प्रवत्त होते हैं और वह पापों से निवृत्त होता है।
- ईश्वर की उपासना ईश्वर से परिपूर्ण भण्डार है और प्रभु प्रार्थना उसे पाने की चाबी।
- ईश्वर एक है, उसका ज्ञान ज्योतिस्वरूप है, ईश्वर को अनेक मानना अग्नि के समान है। एकता की शान ज्योति मनुष्य के सब पापों को भस्म करती है।

- जो मनुष्य श्रद्धा नहीं रख सकता, वह धर्म पालन भी नहीं कर सकता है।
- सत्य को छोड़कर असत्य की ओर जाना ही अधोगति में पड़ना है।
- जब साधक अधिक खाने लगता है तो देवता रोने लगते हैं।
- आहार में जिसकी लालसा बढ़ती है, वह साधना के मार्ग से जल्दी ही दूर हो जाता है।
- एकान्त प्रेमी व्यक्ति भोगों से दूर रहे यही उसके लिए ईश्वरदत्त आहार है। इसी आहार से श्रद्धावान साधक आगे बढ़ने की शक्ति प्राप्त करता है।
- विषयी मनुष्यों को पदार्थों के संग्रह में जितना प्रेम होता है उतना ही प्रेम उन पदार्थों के त्याग करने में– ऐसा जिसके मन में हो वही सच्चा त्यागी बन सकता है।
- मैं कब सब लोगों में प्रभु का भरोसा करने वाला बन सकूँगा ? कब फकीरी का बाना पहन कर सच्चे त्यागियों की संगति कर सकूँगा ?
- ''उस समय जब तहेदिल से आत्मा संयम करेगा। वह आत्म संयम ऐसा हो कि तीन दिन तक प्रभु खाने को कुछ भी न दे तो भी वह न डिगे। जब तक इतनी योग्यता नहीं आ जाय तब तक फकीरी बाना पहनना निरी मूर्खता है।''
- 'कल कौन निर्भय बनेगा ?''
- 'आज जो ईश्वर से अधिक भयभीत है'
- 'सच्ची श्रद्धा कब होगी'
- 'अपनी सारी भलाई का भार ईश्वर पर छोड़ देने पर'
- 'सच्चा धनवान कौन है' ?
- 'जिसने ईश्वर की ओर से निर्भयता प्राप्त कर ली है।'
- 'ईश्वरदर्शी कौन ?
- 'उस परमात्मा के अस्तित्व को देखने वाला और संसार को चार दिन की चाँदनी के समान समझने वाला।'
- 'विरक्ति' अर्थात् ?
- 'जगत की सब वस्तुओं को छोड़कर एक प्रभु ही को अपना धन और सर्वस्य मानना।'

- 'कौन मनुष्य वैराग्य में अधिक दृढ़ है' ?
- 'जिसका प्रभु के प्रति विश्वास अधिक है।'
- 'सच्चे प्रेम के लक्षण क्या हैं ?'
- 'हित होने पर जिस प्रेम में वृद्धि नहीं होती और अहित होने पर न्यूनता।'
- प्रभु प्रेमियों के तीन गुण होते हैं– 1. सब वस्तुओं में ईश्वर व्याप्त है, ऐसी पूर्ण श्रद्धा। 2. लौकिक वासनाओं से निवृत्ति और 3. ईश्वर में सब वस्तुऐं हैं ऐसा दृढ़ विश्वास ।
- लौकिक मनुष्य की सेवा नौकर–चौकर करते हैं और अलौकिक लोगों की सेवा साधु, वैरागी और महान पुरुष करते हैं।
- मनुष्य से तो जितनी कम हो सके बात करो, ज्यादा बात तो करो उस ईश्वर से।
- जो ईश्वर को अपना सर्वस्व मानता है वही असली धनवान है। दुनियाँ की चीजों में अपनी सम्पत्ति मानने वाला तो सदा गरीब ही रहेगा।
- जिस सत्कर्म से अहंकार उत्पन्न होता है उससे तो पाप भी उत्तम है जो ईश्वर की ओर ले जाये।
- ईश्वर के साथ जिसकी दोस्ती हुई उसे अपनी दुनियाँ की सम्पत्ति के साथ तो दुश्मनी हुई ही समझ लेनी चाहिए।

गीता का सार

तबीयत है कमजोर दिल नर्म है
यह उलझन है अब क्या मेरा धर्म है
मैं चेला हूँ मेरी मदद कीजिए ।
जो हो नेक रस्ता बता दीजिये ।।
गुडाकेश वो फतिहाए दुश्मना।
ऋषिकेश से कर चुका सब बया।।
तो यों कह के चुप हो गया वो हजी ।
''मै गोबिंद लड़ता लड़ाता नहीं।।
इधर फौज थी और उधर फौज थी ।
दिल अर्जुन का और गम की इक मौज थी।

ऋषिकेश कुछ मुस्कुराने लगे।
यह उर्फा के मोती लुटाने लगे।।
तू बातों के आकिल! न हो दिल मलूल।।
न कर उनका गम जिनका गम है फजूल
सताए न दाना को रंजो अलम
मरे का न सोग और न जीतेगा गम ।।
अजल से थी मौजूद हस्ती मेरी
अजल से मौजूद हस्ती तेरी।
यह राजे सभी और यह खलकत तमाम।
हमेशा से है और रहेंगे मदाम ।।
वो इंसा जो सुख दुख में हमवार है ।
जो हर इक का हमदर्द गमख्वार है ।।
किसी का न बैरी हो बख्शे कसूर ।
खुदी से भी दूर और तआल्लुक से दूर।।
वो योगी जिसे खुद पे है इख्तियार।
वो साबर है और अज्म में उस्तबार।।
दिल–ओ अक्ल मुझ पे कुर्बान करे।
वही है मेरा भक्त प्यारा मुझे।।
जो दुनिया को आजार देता नहीं।
जो दुनिया से आजार लेता नहीं।।
बरी बुग्ज ओ ऐश ओ गम ओ खौफ से।
वही है मेरा भक्त प्यारा मुझे।।
जो चौकस है बेलाग और बेनियाज।
दुखों से मुबरग है और पाक नाज।।
जो तर्के जजा इब्तदा से करे।
वही है मेरा भक्त प्यारा मुझे।।
मुस्सरत से भी दूर और नफरत से दूर।
गमो ख्वाइश ओ नेक ओ बद से नफूर।।
हमेशा जो भक्ति से शादां रहे।
वही है मेरा भक्त प्यारा मुझे।।
बराबर जिसे दोस्त दुश्मन तमाम।
न सुख दुःख न इज्जत न जिल्ल्त से काम।।

हो गर्मी की सर्दी जिसे एक सी।
लगन हो किसी से न जिसकी लगी।।
बराबर हों जिसके लिए मद्दा ओ जम।
वो कम गो न जिसको गमो बेशो कम।।
कभी दिल का आजाद घर बार हो।
वही है मेरा भक्त प्यारा मुझे।
जो करते हैं कायम ये अमृत सा धर्म।
यकीं से जो रखते हैं सीनों को गर्म।।
जो मकसूद आला समझ ले मुझे।
वही भक्त है सब से प्यारा मुझे।।
लगी है जिसे अक्ल ए खालिस की धुन।
यहीं छोड़ देगा वो सब पाप पुन्य।।
कम योग तन मन में बस जाय योग।
अमल में हुनर हो तो कहलाये योग।।
कोई इल्म से लाख पुरनूर है।
मगर अपनी फितरत से मजबूर है।।
बशर अपनी फितरत बदलता नहीं।
यहाँ जबर से काम चलता नहीं।।
तू सब धर्म छोड़ और ले मेरी राह।
तू माँग आके दामन में मेरे पनाह।।
तेरे पाप सब दूर कर दूंगा मैं।
न गमगीं हो मसरूर केर दूंगा मैं।।
यह राज उससे मत कह जो जाहिद न हो।
यह राज उससे मत कह जो आबिद न हो।।
न उससे जो हो बदजुबां नुक्ताचीं।
न उससे जो सुनने का ख्वावांनहीं।।
कहाँ उससे बढ़कर है इंसा कोई।
करे ऐसी प्यारी जो सेवा मेरी।।
मुरव्वत की आखों का तारा है वो।
मुझे सारी दुनिया से प्यारा है वो।।

ध्यान में बैठने से पहले

(स्वामी अशोकानन्द)

ईश्वर सम्बन्धी एक विचार का न टूटने वाला प्रवाह ध्यान कहलाता है। मेरा विश्वास है कि इस ध्यान से मनुष्य सर्वोच्च सत्य की उपलब्धि सहज ही कर सकता है, क्योंकि यदि कोई एक विचार लम्बे समय तक लगातार चलता रहे तो अन्त में मन उस विचार से अभिभूत हो जाता है। यदि हम किसी भाव विशेष से मन को लगातार रंगते रहें तो प्रारम्भ में मन की चाहे जैसी अवस्था रहे – वह आध्यात्मिक हो न हो, उसमें ईश्वर के प्रति अनुरक्ति हो अथवा वह वासनाओं से क्षुब्ध हो – कालान्तर में उसमें इच्छानुकूल परिवर्तन आएगा ही।

श्री रामकृष्ण परमहंस जी इस तथ्य पर अधिक बल देते थे। वे कहते थे कि मन मानो रंगरेज के यहाँ का कपड़ा है। कपड़े को जिस रंग में डुबाओ, वह वही रंग ले लेता है। पहले तो मैं समझता था कि श्रीरामकृष्ण जी का तात्पर्य यह है कि मन को भगवत् चिन्तन में डुबोकर ईश्वर के रंग में रंगने के लिए उसे पहले पूरी तरह से पवित्र बना लेना चाहिए। किन्तु प्रायः सभी आध्यात्मिक साधकों के समक्ष मन की शुद्धि ही सबसे बड़ी समस्या रही है। इस प्रकार की पवित्रता का पा लेना मानो तीन–चौथाई युद्ध को जीत लेना है, क्योंकि जब मन पूरी तरह शुद्ध हो जाता है तो आध्यात्मिक अनुभूति स्वतः ही उपस्थित होती है। यहाँ श्री रामकृष्ण जी का तात्पर्य साधारण मन से है जो मन सांसारिक और विरोधी विचारों एवं भावनाओं से ठसाठस भरा होता है तथा जो ईश्वर सम्बन्धी विचारों से विमुख है। मेरी समझ में उनका तात्पर्य यह था कि साधारण मन भी यदि ईश्वर–चिन्तन में डुबा दिया जाए तो वह भी आध्यात्मिक रंग ले लेगा।

एक समय कोई व्यक्ति श्रीरामकृष्ण जी के पास आया और कहने लगा, ''मैं अपने मन को वश में नहीं कर पा रहा हूँ – उसका उपाय भी नहीं जानता।'' श्रीरामकृष्ण जी ने इस पर कहा, ''तुम अभ्यास योग क्यों

नहीं साधते ?'' अभ्यास योग का तात्पर्य है – मन को बारम्बार ईश्वर के चिन्तन में लगाना। भगवद्गीता में इस साधन की विशेष चर्चा की गयी है। प्रारम्भ में मन यदि इधर–उधर घूमता है तो इसमें क्या क्षति है ? पर हाँ, हमें उस मन को खींचकर बारम्बार ईश्वर में लगाना चाहिए। पर दुर्भाग्य से बहुधा हम इसे भूल जाते हैं और दूसरी बातों में मन को लगा देते हैं।

ध्यान में सफल होने के लिए हमें क्या करना चाहिए ?

1) सर्वप्रथम हमें दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए कि हम अभ्यास में एकदम नियमित रहेंगे। जिस प्रकार अपनी अनिवार्य शारीरिक आवश्यकताओं के प्रति हम सर्वदा सचेत और तत्पर रहते हैं – चाहे कुछ भी हो हम उनके लिए समय निकाल ही लेते हैं – उसी प्रकार हमें ध्यान के अभ्यास के प्रति भी निष्ठावान होना चाहिए। श्वास–प्रश्वास के समान ही ध्यान को भी जीवन का अंग बन जाना चाहिए। भले ही प्रारम्भ में ध्यानाभ्यास की इच्छा उतनी तीव्र न दिखती हो पर मन में दृढ़ निश्चय कर लो, अपने आप से कहो, *''मैं ध्यान करूँगा ही...''*

यदि कोई कहे कि मुझे ध्यान के लिए समय नहीं मिलता तो उसकी बात में कोई युक्ति नहीं है। हाँ, कभी–कभार ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती हैं, जब किसी को सचमुच ही समय नहीं मिले। पर यह कहना कि, ''मैं इतना व्यस्त रहता हूँ कि उसके लिए समय नहीं निकाल पाता'', अथवा यह कि, मैं शाम को इतना थक जाता हूँ कि ध्यान में बैठना सम्भव नहीं हो पाता'', केवल टालमटोल है। श्रीरामकृष्ण मुसलमानों की प्रार्थना सम्बन्धी वक्त की पाबन्दी की बहुधा प्रशन्सा करते थे। मुसलमान चाहे जहाँ हो, चाहे जो करता हो, पर ज्योंही नमाज़ का समय हुआ कि वह सब काम छोड़कर नमाज़ पढ़ने लगता है। जहाँ चाह है, वहाँ राह है। यदि तुम संकल्प कर लो तो नित्य ध्यान के लिए समय निकाल सकते हो।

कभी–कभी ध्यान के समय मन अद्भुत रूप से कार्य करता है, वह सहज ही शान्त और एकाग्र हो जाता है, परन्तु यदि दूसरे समय वह शान्त

होना नामन्जूर कर दे और तरह–तरह के विचारों से चंचल होता रहे तो हो सकता है तुम कह बैठो, ''ध्यान करने से कोई लाभ नहीं, प्रयत्न तो करता हूँ... पर कोई फल नहीं होता।'' यहाँ पर मैं बताना चाहूँगा कि यदि तुम उदात्त मानसिक गुणों के साथ जन्में नहीं हो और आध्यात्मिक विकास की प्रकर्ष अवस्था में पहुँचे हुए नहीं हो तो अन्य सभी साधकों की तरह तुम्हें भी मन के उतार–चढ़ाव देखने होंगे। पर उससे हताश न होओ। ऐसा न सोचो कि जब तक मन पर्याप्त रूप से आध्यात्मिक नहीं हुआ है तब तक तुम ध्यान करने के योग्य नहीं हो। कुछ लोगों ने पूछा है, ''मन की निम्न अवस्था में ईश्वर की ओर कैसे जा सकता हूँ?'' यदि तुम्हें ठंड लग रही हो तो क्या तुम कहोगे कि, ''चूँकि मैं ठंडा हूँ अतः आग के पास जाने से पहले गरम हो लूँ, या यह कि चूँकि मुझे ठंड लग रही है, अतः पहला काम यह है कि आग के पास जाऊँ और अपने को गर्म कर लूँ?'' यदि तुम अपने भीतर आध्यात्मिकता का अभाव देखते हो तो वही ईश्वर का ध्यान करने का सबसे उचित समय है।

स्वयं को मन के द्वारा गुमराह न होने दो। तुम्हारी मानसिक दशा कैसी भी क्यों न हो, भले ही तुम्हारा मन निम्न विचारों से भरा हो पर ईश्वर के चिन्तन का प्रयत्न करते रहो। बदमाश घोड़ा दुलत्तियाँ झाड़ता है, अड़ जाता है और सवार को फेंक देने की कोशिश करता है। पर यदि सवार दृढ़ता से जीन पर बैठा रहे तो घोड़ा शान्त हो जाता है और जान लेता है कि उसे स्वामी मिल गया है। मन भी इसी भाँति बर्ताव करता है। उस पर सवार होने का निश्चय कर लो और यह निश्चय ही, जिसमें ध्यान उपलक्षित है, अपने आप में एक विजय है।

2) इसके बाद ध्यान के लिए तुम एक नियत समय बना लो। मेरे मत से मनुष्य को दिन में कम से कम दो बार ध्यान करना चाहिए। यदि दो बार न हो सके तो एक बार अवश्य ही करना चाहिए – चाहे प्रातःकाल या सन्ध्या के समय।

ब्रह्म मुहूर्त (सूर्योदय के कम से कम एक घन्टा पहले) के ध्यान में सायंकाल के ध्यान के अपेक्षा कुछ अधिक विशेषता है। रात्रि विश्राम के बाद

मन शान्त रहता है। मन पर पूर्व दिन के पड़े सारे संस्कार तिरोहित से रहते हैं, जैसे स्कूल के बाद किसी ने तख्ते को पोंछ दिया हो। फिर उस समय प्रकृति भी निस्तब्ध रहती है और शहर भी पूरा जागा हुआ और कोलाहल पूर्ण नहीं रहता। फलतः मन को शान्त करना अपेक्षाकृत सरल मालूम होता है।

ध्यान के लिए नियत समय का दृढ़तापूर्वक पालन करना महत्वपूर्ण है क्योंकि मन आदत के अनुसार कार्य करता है। यदि मन को लगातार कई दिनों तक एक नियत समय पर एक विशिष्ट ढंग से सोचने और अनुभव करने के लिए बाध्य किया जाए तो वह उस नियत समय के आते ही अपने आप उसी ढ़ंग से सोचने और अनुभव करने लगेगा। यदि हम एक निर्दिष्ट समय में ईश्वर का ध्यान करें तो उस निर्दिष्ट समय के सन्निकट आते ही हमारा मन बिना किसी प्रयत्न के ईश्वरी भाव से भावित हो जायेगा। अभ्यास की नियमितता से प्राप्त होने वाला यह कोई सामान्य लाभ नहीं है।

3) जिस प्रकार ध्यान के लिए एक नियत समय आवश्यक है, उसी प्रकार उसके लिए एक निर्दिष्ट स्थान भी आवश्यक है। मन्दिरों एवं गिरजाघरों में लोग ईश्वर चिन्तन करते हैं, इसलिए वहाँ की हवा तक पवित्रता और ईश्वरी भाव से भरी रहती है। वहाँ जाने से ही मन ऊपर उठ जाता है। मन्दिर या गिरजाघर का यह वातावरण तुम अपने कमरे के कोने में भी ला सकते हो, क्योंकि जहाँ पर भी कोई विचार–प्रवाह तीव्रता के साथ अविकल रूप से बहता है वह स्थान उस विचार के स्पन्दनों से भर जाता है। इस प्रकार ध्यान का तुम्हारा निर्दिष्ट स्थान आध्यात्मिक ऊर्जा से भर जायेगा और ज्योंही तुम उस स्थान पर पहुँचोगे त्योंही तुम्हारा मन ध्यान के भाव से भावित हो उठेगा।

4) जब हम अपने मन में छिपे वासना, आवेश, लोलुपता और कामना रूपी सूक्ष्म शत्रुओं का बल नापते हैं, तो जिन उपायों की मैंने ऊपर चर्चा की है, वे बचाव के लिए बहुत कमजोर दिखते हैं। जैसे जाड़ों में बाग–बगीचों की घास पात और सूखे तृण साफ़ कर दिये जाते हैं पर वसंत की पहली वर्षा

से ही धरती में पड़े हुए सूक्ष्माकार बीज अंकुरित होकर हरियाली छा देते हैं, उसी प्रकार हमारे मन में बहुत से सूक्ष्म विचार, संस्कार और कामनाएँ छिपी रहती हैं, और उठने के लिए प्रथम अवसर की ताक़ में रहती हैं। अतएव हमें बड़ा सावधान रहना चाहिए।

मन की किसी स्थिति को जीतने के लिए उस पर सीधा हमला बोल देना लाभ के बदले हानि अधिक कर सकता है, क्योंकि उससे मन बहुधा और भी अधिक फँसता जाता है। उत्तम तो यह है कि जिस मनःस्थिति को दूर करना है उसका चिन्तन ही न किया जाये। इस मनोवैज्ञानिक सत्य को याद रखो– जितना ही तुम मन की किसी अवस्था का चिन्तन करोगे, वह उतनी ही दृढ़ होती जायेगी।

यदि आज तुम अपने में कोई ऐसा महत् दोष पाते हो जिसे दूर करना लगभग असम्भव सा लगता है तो तुम्हीं ने उसे बारम्बार सोचकर और उसमें मन को लगाकर उसे इतना प्रबल बनाया होगा। उस पर न सोचो, उसे आश्रय न दो, देखोगे कि वह निस्तेज हो जायेगा ओर पोषण के अभाव में धीरे–धीरे मिट जायेगा। मैं यह नहीं कहता कि यह विधि सरल है, पर अभ्यास से तुम इस प्रकार अपनी आदत बना सकते हो। कुछ समय तक अपनी अवान्छित भावनाओं को अनाहार रख देने से तुम देखोगे कि भले ही उनमें से कई मिट चुकी हैं तथापि कुछ बनी हुई हैं। उसकी अधिक चिन्ता न करो, उन्हें रहने दो, पर देखो कि उन्हें बल न मिलने पाये। उन्हें घेरे में डाले रखो। देखोगे कि अन्त में वे भी मिट जायेंगी।

5) **आध्यात्मिक उन्नति के लिए कुछ शारीरिक कठोरता नितान्त आवश्यक है।** तुममें से जो ध्यान के उतने उत्सुक नहीं हैं, ऐसा कह सकते हैं, ''उसे अगले जन्म के लिए छोड़ देते हैं'', या ''उस ओर हम कुछ साल बाद जायेंगे।'' कई लोग सोचते हैं कि यौवन जीवन के उपभोग के लिए है, जब हम बूढ़े हो चलेंगे तब धर्म का अभ्यास शुरु करेंगे। दूसरे शब्दों में जब संसार खट्टा हो चलेगा तब उतरी हुई सूरत लेकर मन्दिर या गिर्जे में जायेंगे और सोचेंगे कि उन्हें धर्म प्राप्त हो गया। वह धर्म नहीं है और हो भी नहीं सकता। उस समय हम भगवान के पास क्या ले जाते हैं ? एक

जीर्ण शरीर और शीर्ण मन जो पूरी तरह जर्जर हो गया है। क्या सोचते हो कि भगवान उससे प्रसन्न होंगे ? हम उनकी वेदी पर कीड़े पड़े फलों या कुम्लाये हुए फूलों को नहीं चढ़ाते, वहाँ तो निर्दोष और उत्कृष्ट वस्तुओं का समर्पण करते हैं। उसी प्रकार हमें चाहिए कि हम अपना जो कुछ सबसे श्रेष्ठ है उसे उनके चरणों में निवेदित करें। तेजस्वी और शुद्ध मन का नैवेद्य भगवान को सबसे अधिक पसंद है। युवकों को विशेष रूप से आध्यात्मिक बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण ने एक समय कॉलेज के एक युवा छात्र से कहा था, ''जब कुम्हार ईंट बनाता है तो उसे कच्चा रहते ही उस पर अपना ट्रेडमार्क अंकित कर देता है। उसके बाद जब ईंट को धूप में सुखा कर भट्ठी में पका लिया जाता है तो वह मार्क अमिट हो जाता है। उसी प्रकार यदि मन के कच्चे रहते उस पर भगवान की छाप लगा लो तो यह छाप कभी नहीं मिटेगी, सदैव बनी रहेगी।''

6) जब तक हम अभ्यास में पूरी तरह प्रतिष्ठित नहीं हो जाते तब तक ध्यान के समय मन के शान्त होने में कुछ समय लगेगा। असल में, ध्यान में बैठने से कुछ पहले अपने आपको शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा अनुभव करने की कोशिश करो कि तुम्हारा संसार में कोई सम्बन्ध नहीं है, तुम्हें उससे न कुछ लेना है न देना। भले ही पति, पत्नी, माता, पिता, पुत्र या कन्या के रूप में तुम्हारे अनेकानेक कर्तव्य हैं और तुम्हें सैकड़ों बातों की ओर ध्यान देना है पर जब तुम भगवान की ओर जाओ तो ऐसा सोचो कि तुम्हारे लिए जगत त्रिकाल में नहीं है। तुम्हारे पति, पत्नी, पिता, माता, मित्र, देश कुछ नहीं है। ध्यान की बेला में इसी प्रकार का चिन्तन अपेक्षित है।

जब तुम शाश्वत प्रभु का चिन्तन करते हो तो उस समय तक के लिए समस्त सम्बन्धों से ऊपर उठ जाने का प्रयास करते रहो। तुम्हें दृढ़तापूर्वक कहना चाहिए, ''मेरे शरीर नहीं है, मन नहीं है। देश काल मिट चुके हैं। सारा ब्रह्माण्ड लुप्त हो गया है। एकमात्र ईश्वर ही है।'' इस प्रकार ध्यान

के स्थान में प्रवेश करने से पहले तुम्हें समस्त सांसारिक बातों को बाहर ही छोड़ देना चाहिए।

7) ध्यान के अभ्यास में तीव्र आकुलता और श्रद्धा बहुत महत्वपूर्ण अंग हैं। भगवान में अगर दृढ़ विश्वास न हो और उन्हें पाने के लिए तीव्र व्याकुलता न रहे तो ध्यान में कोई उत्साह नहीं रह जाता, वह नीरस हो जाता है।

ईश्वर से प्रार्थना करो। ईश्वर जो हमारा पिता है, माता है, मित्र और प्रभु है, जो इस जगत का सर्वव्यापी स्रष्टा है, जो हमारी प्रार्थनाएँ सुनता है, जिसके पास हम उसी विश्वास से जा सकते हैं जिस सरल विश्वास से बच्चे अपने माता–पिता के पास जाते हैं। ऐसे ईश्वर में विश्वास और प्यार करना ध्यान को तुम्हारे लिए सरल बना देता है। मन को अधिकाधिक ईश्वर चिन्तन में डुबाते रहो। सारे कार्य उसी के निमित्त करो।

7) यह किस प्रकार करोगे ? शरीर और मन की हर क्रिया को, जैसा बने, ईश्वर की ओर मोड़ दो। यदि मन्दिर के बदले तुम्हें ऑफिस जाना पड़े तो आफिस को ही भगवान का मन्दिर बना लो। चाहे तुम मेज पर बैठे हो या घर के काम में लगे हुए हो, ईश्वर का ध्यान करो। दिन भर तुमने जो कुछ किया वह ऊपर से भले ही ऐसा दिखे कि तुमने अपने नियोक्ता के लिए किया पर सब कुछ ईश्वरार्पित कर दो। क्या तुमने बीस चिठ्ठियाँ टाईप की हैं और अधिकारी के पास हस्ताक्षर के लिए ले गए हो ? कोई हर्ज नहीं, उसे उन पर हस्ताक्षर कर लेने दो। बाद में अपनी आँखों को बन्द करके सब कुछ ईश्वरार्पित कर दो। इस प्रकार तुम अपने विचारों को एक नया मोड़ दोगे। काम करने का यह एक अलग तरीका है। पहले पहल यह तुम्हें कुछ अजीब सा लग सकता है पर इसे छोड़ो मत, इसमें लग जाओ। धीरे–धीरे इसका गहरा अर्थ तुम्हें स्पष्ट होता जाएगा और देखोगे कि तुमने प्रारम्भ में इस अभ्यास को जैसा समझा था वैसा वह नहीं है, वह तो अत्यन्त उपकरी और फलप्रद है।

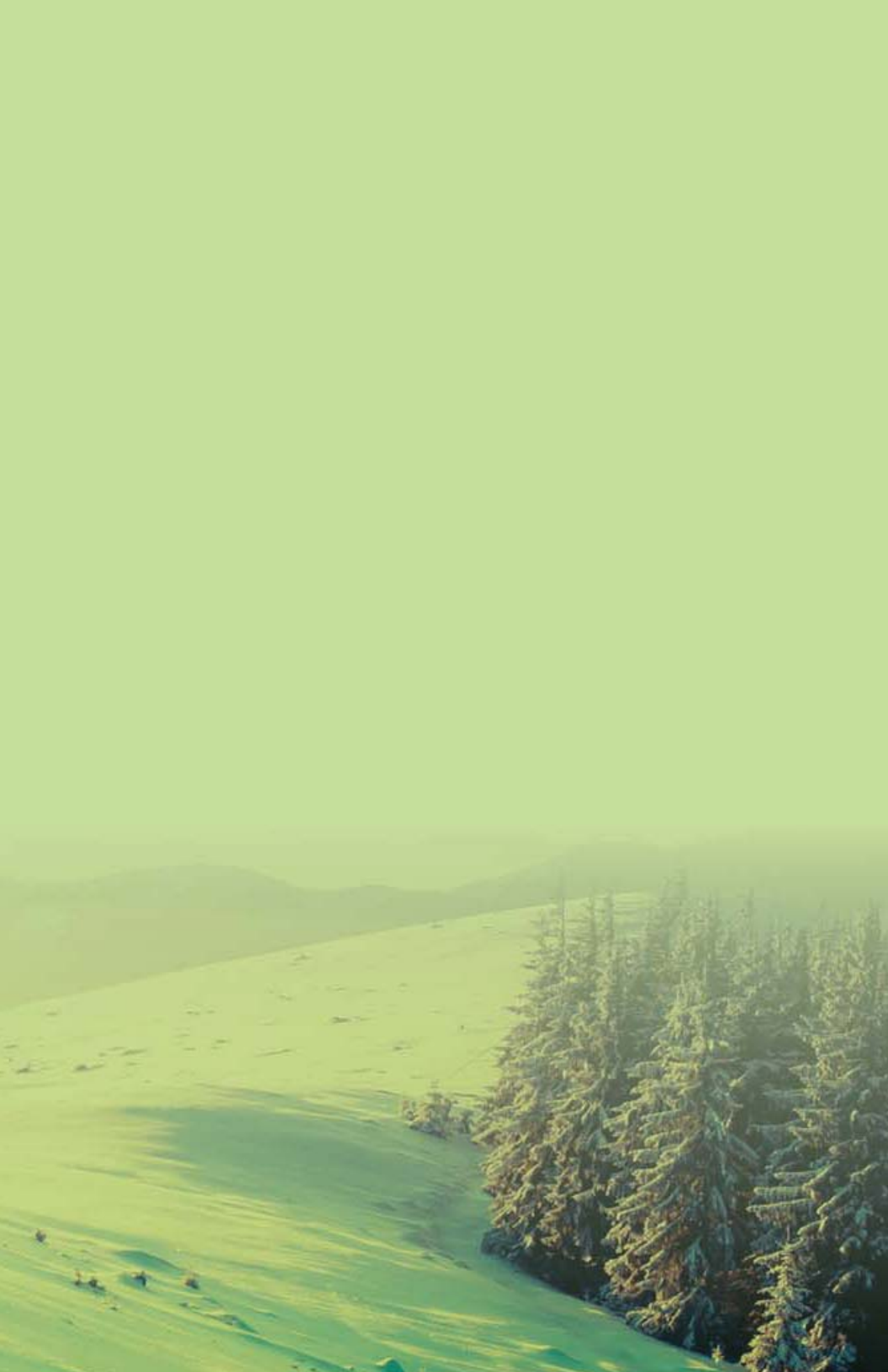

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद-201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301